Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
July to September 2025, E-Journal, Vol. I, Issue LI (51), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

वन्या कहानी संग्रह में आदिवासी स्त्री चरित्र के जीवन का यथार्थ चित्रण

हिमांशु नागदा* डॉ. विजयलक्ष्मी पोद्दार**

* शोधार्थी (हिंदी) तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर (म.प्र.) भारत
** प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (हिंदी) एम.के.एच.एस. गुजराती गर्ल्स कॉलेज, इंदौर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – आदिवासी स्त्री भारतीय समाज का एक ऐसा वर्ग जिसके लिए स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसी आधुनिक लोकतांत्रिक अवधारणाएँ आज भी कल्पना लोक के विषय है। लेखिका ने अपने संग्रह में आदिवासी स्त्री की अस्मिता से जुड़े विभिन्न प्रश्नों को कहानी के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। स्त्री मन की त्रासदी, घुटन व अस्मिता की रक्षा हेतु प्रयत्नरत एवं पुरुष प्रधान समाज के तले दबते व्यक्तित्व को झेलती स्त्री का यथार्थ चित्रण संग्रह में बखूबी किया गया है। मेरे शोध पत्र में मनीषा कुलश्रेष्ठ की वन्या कहानी संग्रह की आदिवासी स्त्री के जीवन में बिलखते संघर्ष की यथार्थता की पड़ताल करने का प्रयास हुआ है। जहां स्त्री अपने स्वाभिमान की लड़ाई वर्षो से लड़ती आ रही है, उसने अपना सर्वस्व श्रम, मजदूरी और ममत्व में ही निकाल दिया है। भेदभाव, अंधविश्वास और अशिक्षा के अंधेरे में वह अपने अस्तित्व के लिए लड़ते दिखाई दे रही हैं। लेखिका का यह नवीनतम संग्रह आदिवासी स्त्री जगत के विभिन्न ज्वलंतशील मुद्दों को उठाता है। सुमिता के स्वावलंबी होने, कुरजां द्वारा आत्मरक्षा करने, गजाला और लुबना द्वारा कला के क्षेत्र में नारी के लिए समाज की बदलती सोच की उम्मीदें रखना, सुरमन और प्रिश्का का अपनी मातृभूमि के लिए संघर्ष करना, अनचाहे जीवन पथ में मिति का स्वाभिमानी बनना तथा लीलण के यौन शोषण व बेनु के एथलीट खिलाड़ी बनने के संघर्ष को यथार्थ धरातल पर मोतियों की भांति बिखेरता लेखिका का ये संग्रह बड़ा मार्मिक बन पड़ा है। शिक्षा, आधुनिकता व भौतिकता से दूर होने के कारण आदिवासी स्त्री परंपरागत स्त्री की तरह ही पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साये में जीने को अभिशप्त है।

शब्द कुंजी – आदिवासी, समाज, स्त्री, साहित्य, यथार्थता, संघर्ष, शोषण, आत्मनिर्भर, कला, सम्पत्ति, असुरक्षा, अस्मिता, गरीबी, असहाय।

प्रस्तावना – वर्तमान समय में आदिवासी स्त्री के सम्मुख स्त्री–अस्मिता का प्रश्न सबसे बड़ा प्रश्न है। स्त्री–अस्मिता की लड़ाई, स्त्री स्वाभिमान की लड़ाई है। भारतीय समाज में स्त्री अस्मिता का प्रश्न आधुनिक चेतना का प्रश्न है। आधुनिक स्त्री को जब अपनी भारतीय परम्परा में अपना चेहरा दिखाई नहीं देता है तब वह अपनी परम्परा की तलाश करती हुई इतिहास में लौटती है और अपने को स्थापित कराना चाहती है। आदिवासी महिलाओं के सामने यह समस्याएँ दुगुनी है। साहित्य में इन महिलाओं का चित्रण न के बराबर हुआ है। आदिवासी आंदोलनों पर एक नजर डाले तो आदिवासी स्त्रियों ने उसमें बढ़ चढ़कर भाग लिया है किंतु किताबों में इन्हें हाशिए पर डाल दिया गया है। आदिवासी लेखन और उससे संबद्ध स्त्री विमर्श में अभी तक 'स्वानुभूति बनाम सहानुभूति' जैसी बहस केंद्र से दूर परिधि के इर्द–गिर्द घूम रही हैं। खड़िया आदिवासी लेखिका डॉ रोज केरकेट्टा इस संदर्भ में कहती हैं– 'आदिवासी शिष्ट सात्पी में स्त्री श्रम, सहिष्णुता और ममत्व से पूर्ण तो मिलती है लेकिन अपने लिए और परिवार के लिए निर्णय लेती हुई कम मिलती है। वह जीने के लिए कठिन परिश्रम करती हैं, देश–परदेश जाती हैं, सेवा करती हैं, स्वयं को नहीं दूसरों को प्रसन्न रखने के लिए।'[1]

हिंदी साहित्य में एक मुखर और महत्वपूर्ण स्वर मनीषा कुलश्रेष्ठ अपनी कहानियों के द्वारा स्त्री की वास्तविक स्थितियों को सामने लेकर आई है। उनकी कहानियों में शोषण, मानसिक तनाव, घुटन, छटपटाहट, आरोप, लांछन और झूठी मर्यादाओं को ललकारने की कसमसाहट इत्यादि का वर्णन किया गया है जो सीधे तौर पर औरत के जीवन को प्रभावित करते हैं। आदिवासी स्त्री की व्याख्या करते हुए लेखिका पुस्तक की भूमिका में वन्या का परिचय देती हैं– 'वन्या जानते हैं न जंगल से गुजरने वाली नदियों को कहते हैं, जहां उनका बहाव उन्मुक्त होता है मगर बाधाएं भी कम नहीं होती चाहे वे बीच में पहाड़ों चट्टानों से टकराकर झरनों में बदल जाए या कहीं किसी पुल में बांध दी जाए, अवरुद्ध कर दी जाए मगर वह प्रभावित होती रहती हैं चाहे उन्हें फिर पत्थर के अंतस से राह बनानी पड़े। यह सुप्त होकर फिर जगाती हैं और बहती हैं। इस कथा संकलन की कहानी भी ऐसी ही स्त्रियों की हैं।'[2]

'वन्या' कहानी संकलन आदिवासी स्त्री संघर्ष की कथाएं हैं जो रूढ़ अर्थ में आदिवासी विमर्श की कथाएं नहीं है आदिवासी जीवन की कहानियों को आप यूं ही नहीं कह सकते। उसके लिए वही आदम परिवेश, सरल किंतु वही भाषा एवं शैली, भाषा के साथ गीतात्मकता, पैतृक से मिले कहन–कथन, वही थिरकन, पेड़ों और पशुओं से प्रेम और सखा भाव तथा वन के प्रति चिंता भी लानी होगी।

वन्या संकलन की 'नर्सरी' कहानी एक सतरंगी गेंद (जिसे बार–बार धोए जाने पर उसका रंग हल्का होने लगा) के चाय बागान और उसके आसपास भटकने के बहाने जीवन के भटकावों से हमारा परिचय कराती है। इस कहानी में आदिवासी स्त्री जीवन को प्रस्तुत किया है जिसे चाय बागान की स्थाई कामगार आदिवासी स्त्रियों, बच्चों की देखभाल तथा पालना घर की इंचार्ज लड़की के रूप में बताया गया है। संथाल, उराव, गोंड, मुंडा जैसी

जनजाति वाली कामगार आदिवासी स्त्रियां जिनकी पिछली पांच छः पीढ़ियां इन्हीं बागानों में जन्मी खपीं और मर गईं। उनके हाथ पारंगत थे, पैरों में गरम लहू बहता था। वे अपने काम के प्रति इतनी सजग हो चुकी कि अब उन्हें अपने मालिक और मैनेजर का कोई भय नहीं रहता। विरासत में मिला यह डर अब आदत बन गया था। यहां लेखिका ने मालिक नौकर व्यवस्था पर तंज कसते हुए आदिवासी स्त्रियों को लेकर कहानी में लिखा है– 'वे पैर धूल–धूसरित थे मगर उनमें गरम लहू बहता है, यह बात जोंके ज्यादा अच्छी तरह जानती थी, बजाए मालिकों और मनीजर साहबों के। वे उतना ही खून चुसती थी जितने में उनका पेट भर जाता।'[3]

कहानी की एक पात्र सुमिता है जो पालना–घर की इंचार्ज रूप में आदिवासी कामगार स्त्रियों के बच्चों का देखभाल करती हैं। सुमिता एक स्वतंत्र ख्यालों वाली स्वावलंबी लड़की हैं जो सात सौ रुपए महीने कमा कर अपने परिवार का पालन पोषण करती हैं। उसका मित्र सुमिता के जीवन को बेकारी का जीवन समझता है। वह कहता हैद 'सात सौ रुपए महीने के इस बेकार काम का घमंड कर रही हैं? इन अधनंगे मजदूर बच्चों में दिन खपा देती हैं।'[4]

शहर से लगे गांव में भी जब कही सुनाई बातों पर विश्वास किया जा सकता है तो फिर यह तो आदिवासी और जंगली इलाका है। सुमिता की मां जब सुमिता के शहर जाने की बात सुनती हैं तो उसे एक स्कूल वाली दीदी की बात याद आती है वह कहती थी कि 'लड़कियों को शहर ले जाकर बेच देते हैं और...'[5] इससे यह स्पष्ट होता कि जो रूढ़ मानसिकता सदियों से बना रखी है वह इतनी शीघ्र समाप्त होने से रही।

सुमिता उन सुंदर गहरे हरे रंग के चाय के झाड़ो को देखती हुई अपने भविष्य के बारे में सोचती हैं। शायद उस चाय के झाड़ की सुंदरता के नीचे की काली छाया को देखकर। 'एक सौ साठ साल लंबी विडंबना के बारे में जब उसकी परनानियों–परदादियों को अंदरूनी आदिवासी इलाकों से यहां लाया होगा, जहां उनका कोई नहीं था। जहां वे लगभग बंदी थे, जहां उन्हें जानबूझकर इतने अभावों में रखा कि पुश्तें की पुश्तें अपने हाथों बस पत्तियां तोड़े और इन्हीं हाथों से चार निवाले निगलकर यही हाथ सिरहाने लगा कर फर्श पर सो जाएं।'[6] इस कहानी के चाय बागानों के हरे समुद्र में एक नहीं दो दुनिया बसती हैं, एक मिस्टर घोष और मिसेज घोष जैसी तो दूसरी सुमिता जैसी अन्य आदिवासी स्त्रियों वाली।

'कुरजां' कहानी विशेष है, क्योंकि यह किसी आदिवासी या ग्रामीण स्त्री की कहानी ही हो सकती थी। यह किसी अन्य समाज की स्त्री के लिए भोगा नहीं पर समझने योग्य यथार्थ हैं। ये कहानी घुमंतू कबीलों के जीवन से निकलकर कुरजां स्त्री के डाकन (डायन) करार दिए जाने की कहानी है, जहां स्त्री मन की त्रासदी पाठक वर्ग के मन को बोझिलता से भरती हैं। कहानी में ऐसी आदिवासी स्त्री का चित्रण है जहां अंधविश्वास और रूढ़ियां एक अच्छे भले इंसान को अमानवीय कृत्यों का कर्ता मान उसके जीवन को बर्बाद कर देता है।

कुरजां, गांव में हेडमास्टर के रूप में आए मास्टर जी से अपने बच्चे के दाखिले की बात करती हैं, लेकिन मास्टर जी का नौकर कालू मास्टर जी को उस स्त्री से दूर रहने की बात करता है। आखिरकार, कालू है तो उसी गांव में फलित व्यक्तिय उसके अनुसार कुरजां की नजर जिस पर पड़ती है वह बर्बाद हो जाते हैं। कालू कहता हैद 'जड़ी–बूटियां देती है औरतों को, इलाज करती। विश्वास जीत लिया लुगाइयों का। मनमाना पैसा और घर–घर जाकर अनाज मांगने लगी तो औरतों ने मना करना शुरू किया...। फिर तो जो इसे मना करें उसके घर में बच्चे बीमार पड़ जाए, मौत हो जाए। मेरी ही औरत के जब तीसरा बच्चा होने को था तो हम देवता के यहां से लड़का होने की भभूत लाए...। ये रांड सामने पड़ गई... कि तीसरी भी लड़की पैदा हो गई।'[7] इसी प्रकार से एक गरीब, बेसहारा औरत के प्रति गांव वालों के अमानवीय व्यवहार का चित्रण इसमें किया गया है। आदिवासी कुरजां से संबद्ध हमारे समाज की भिन्न–भिन्न मन: स्थितियां हमें उन विचित्र रूढ़ियों की तरफ सोचने और विचार करने पर विवश करती हैं जो अभी भी इक्कीसवीं सदी की मानवीय सभ्यता पर अभिशाप की तरह कुंडली मारकर बैठी हैं।

'रक्स की घाटी और शब–ए–फितना' कहानी में लेखिका स्त्री के स्वतंत्र एवं सुरक्षित जीवन जीने की लालसा को दृश्यांकित करती है। असुरक्षा का भाव स्त्री में प्राचीन समय से बना हुआ है, परन्तु इस कहानी के चरित्र कहीं न कहीं एक नवीन सोच को लिए है। मनीषा जी कहानी के एक पात्रय जो कि गजाला के टीचर है, के माध्यम से स्वातंर्त्य स्त्री के पक्ष में जीवन की नई उम्मीदों को व्यक्त करती है– 'फिर भी मुझे थोड़ी उम्मीद हैद क्या तुम्हें है? एक दिन ये कान देखेंगे और आँखें सुनेंगी। जबानों की उठनें खुल जाएगी।'[8] स्पष्टत: गजाला के टीचर को आभास था कि गजाला अपनी बड़ी बहन लुबना की भाँति उम्मीद दबाए बैठी है और एक दिन अवश्य ही स्त्री के सुरक्षित एवं स्वतंत्र जीवन जीने की हृदय में संचित भावनाएँ सच होगी।

कथा स्त्री स्वावलंबन के मद्देनजर नर्तकियों और गायकों के इर्द–गिर्द रहती है, किंतु एक स्त्री के स्वावलंबी होने का अर्थ केवल आर्थिक आत्मनिर्भरता से नहीं है बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका अदा करने से भी हैं। इसके लिए स्त्री को स्वयं के भीतर समय सापेक्ष समाज के हित में नवीन सोच को विकसित कर जगत में नए–नए विचारों के साथ उड़ान भरनी होगी।

संग्रह की अगली कड़ी 'जमीन' कहानी है, जो राजस्थान के एक आदिवासी परिवार की कथा कहती हैं। इसमें सुरमन नामक एकाकी आदिवासी युवती का संघर्ष सामने आया है जो अपनी पैतृक संपत्ति की सुरक्षा के लिए किसी भी हद तक जा सकती है। कहानी में सुरमन का जुझारू व्यक्तित्व है जो बार–बार हमारा ध्यान अपनी ओर खींच लेता है। जमीन को लेकर वर्तमान में भाई–भाई का दुश्मन बना हुआ है। सुरमन का सौतेला काका जमीन पाने के लिए अपनी बेटी जैसी सुरमन को गांव वालों की मदद से धमकियां देता है, उसे बेइज्जत करवाता है। कहानी में सुरमन अपनी मित्र मुकुंदी को कहती हैंद 'मैं तो खेतों में बाल फैला कर रोने वाली चुड़ैलों से दोस्ती कर लूं पर मैं तो अपने सगेवालों से डरती हूँ, जो दिन में दिलासा देते है और रात को किवाड़ से झाँकते हैं... आते–जाते नंगी करके गांव से निकालने की धमकी देना। मुझे दादोसा और मेरी माँ की हराम की औलाद बताना जिसके चलते मेरे बाप ने...'[9] अक्सर कहा जाता है कि घर इंसान के लिए सबसे सुरक्षित जगह होती है। लेकिन कौन कहता है कि महिलाओं का शोषण केवल घर के बाहर ही होता है?

आपसी संवाद, समझ और विश्वास की कमी को चिन्हित करती अन्य कहानी 'आर्किड' में आदिवासी स्त्री संघर्ष के साथ भारत और उसके अभिन्न अंग मणिपुर के जनजातीय समाज का यथार्थ चित्रण किया है। देखा जाए तो यह कहानी नॉर्थईस्ट के अतिरिक्त भारत के किसी भी भाग की कहानी हो सकती है। मणिपुर के जनजातीय और स्थानीय समाज को केन्द्रीय सत्ता के साथ संघर्ष करते हुए इस कहानी में देख सकते है। कहानी में मणिपुर की

लड़की प्रिश्का अपने पिता की तरह कई भारतीय भाषाएँ जानती है, किन्तु उनके विचार सर्वथा भिन्न रहे। उसके पिता नॉर्थईस्ट को भारत का हिस्सा नहीं मानते थे, लेकिन वह 'वहां इंडिया में' की जगह 'अवर इंडिया' जैसे शब्दों का प्रयोग करती थी तथा मणिपुर को देश का अभिन्न हिस्सा मानती थी। जब वह अपने प्रेमी एलन को युद्ध में खो देती हैं तब उसे गहरा आघात लगता है। उसकी अहिंसक प्रवृत्ति और देश से प्रेम कुछ काम नहीं आता। कहानी के अंत में वह कहती नजर आती हैंद 'लोगों को उनके हिस्से का अधिकार न मिले, खाना, शिक्षा, सुरक्षा... वह तो जाने दो इतना संगीन भी नहीं। मगर जो हमारा था, वह तो न छीनता... यह जंगल-पहाड़, हमारी खेतियां, पशु और हमारी औरतें... सुधार कार्यों में समय और ऊर्जा क्या बर्बाद करना, जब कुछ सुधरना ही नहीं है तो क्रांति ही आखिरी इलाज है।'[10] कहानी पूर्वोत्तर की समस्या पर न सिर्फ प्रकाश डालती हैं बल्कि गहन वेदना से भर देती है। कहानी अपने मूल में कहीं अधिक गंभीर मुद्दे पर बात कर रही हैं।

एक कहानी 'नील-घर' अरुणाचल प्रदेश के शेर्गाओं गांव के एक आदिवासी से सुनी गई कहानी है जो वहां के जीवन के बारे में एक झरोखा खोल देती है। सोलो ट्रैवलर्स के लिए स्वर्ग माने जाने वाले इस गांव में नील घर नाम का एक मकान है जिसकी दीवारें नीली तथा ढलवा छत सफेद रंग की थी। यह कहानी मानवीय रिश्ते, प्रेम व प्रेम के लिए आपसे रंजिशों के विभिन्न पहलुओं को उजागर करती हुई गहरे अनुभवों और मानसिक द्वंद्वों को बहुत सूक्ष्मता से प्रस्तुत करती हैं। कहानी की नायिका मिति की किशोरावस्था में ही सगाई हो जाती हैं। यह ऐसी उम्र है जहां मिति जीवन के इस नए पड़ाव के लिए तैयार न थी। उसे अपनी मां लालची लगती थी, जिसने पैसों को अधिक महत्व देते हुए अपनी बेटी का संबंध किसी बाहरी धनी व्यक्ति तोसिरो म्यूफिन से किया। तोसिरो के शेर्गाओं में संतरों के दो बगीचे होने से मिति की मां को वह अपनी बेटी के लिए उपयुक्त साथी लगा। कहानी में वाक्य है- 'किशोरी मिति की सगाई संतरों के फूलों के झरते ही, पेड़ों पर छोटे-छोटे फल आते ही तोसिरो से हो गई थी। मिति से किसी ने कुछ नहीं पूछा। अब वह घनी उलझन में पड़ गई थी। उसकी समझ में नहीं आया कि अब उसे लंबे-दुबले, घने बालों वाले आकर्षक-मेहनती-हंसमुख युवक याबोम को देखकर लजाना और भागना चाहिए कि नहीं? वह इस कम लंबे मगर चौड़े कंधों वाले, तांबई रंग के गंभीर चेहरे वाले तोसिरो से कहीं अच्छा दिखता है।'[11] प्रेम की चाह में दो पुरुषों के मध्य पिसती एक स्त्री की दशा का यथार्थ चित्रण इस कहानी में हुआ है। जहाँ तोसिरो, मिति को याबोम से दुगुना वधू मूल्य चुकाने की बात कहता है। इस पर मिति की प्रतिक्रिया आती है- 'मूल्य-मूल्य! मैं क्या कोई भेड़ हूँ? छोड़ो मुझे... पागल हो चुके हो तुम लोग।''[12] अर्थात् जो स्त्री स्वयं निर्णय लेने की समता रखती हो, उस पर पर-पुरुष बलपूर्वक अपना अधिकार सिद्ध करें, वह कदापि सहन नहीं करेगी।

शासकीय आदिवासी गर्ल्स हॉस्टल के भीतर चल रही घिनौनी व्यवस्था (हॉस्टल मैट्रन द्वारा छात्राओं से यौन क्रियाएं करवाना) एवं वहाँ रहने वाली आदिवासी लड़कियों की दयनीय स्थिति का वर्णन लेखिका ने अपनी प्रसिद्ध कहानी 'अवक्षेप' में किया है। इस बात की पुष्टि कहानी की आदिवासी पात्र 'बेनु' और स्वयं लेखिका के संवाद के माध्यम से होती है- 'पैले के दो महीने की छातरवर्ती इंचारज ने अटका रखी है। पांच सौ पूरे तो कभी देता ही नहीं। खा-पी के दो सौ टिकाता है, फेर भी चार सौ बनते है, मिलते ही दे दूंगी।'

'ऐसा क्यों करता है?'

'करता है। उसके बाप का राज है, नहीं करेगा अगर उसके बिस्तर पे कपड़े काढ के...रांड रा...''

'क्या बकवास करती रहती है बेनु?'

'बताया नहीं आपको पैले। छोटकी चिरमी दस्स बरस की इंचारज के पास फीस के पैसे लेने गई और पूरी चड्डी लाल।...'

'मुझे मत बताया कर यह सब, जाकर पुलिस को बता।'

'पुलिस? वो हमारे यहाँ की दोनों कंजड़िने है न, उनको ले जाके इंचारज पुलिस को खुश रखता है।'

'मैट्रन?'

'वो रण्डी तो पैसे के बदले अपनी बेटी बेच दे।'[13] आदिवासी छात्रावास में किस प्रकार छोटी-छोटी लड़कियों के साथ दुराचार किया जाता है और अगर कोई लड़की इसके विरुद्ध आवाज उठाने का प्रयत्न भर भी करती है, तो उसे मार ही दिया जाता है। अवक्षेप कहानी ऐसी आदिवासी लड़कियों और उनकी त्रास पूर्ण जीवन के प्रति मानवीय संवेदना व्यक्त करती है।

यदि किसी पुस्तक की कोई एक कहानी भी पाठक वर्ग के मूर्छित मन को होश में ला उसके भीतर मानवीय भाव जगा दे तो साहित्यकार अपने लेखन के उद्देश्य में सफल कहा जाएगा। संग्रह की अंतिम कहानी 'एक थी लीलण' ऐसी ही कहानी है, जिसमें यौन अपराध की शिकार आदिवासी लड़की लीलण मृत देह के मार्फत अपनी कथा कहती हैं। इस कथा को पढ़कर मुझे सीधे हरिशंकर परसाई जी का कथन याद आ गया। वह कहते हैं, 'बलात्कार को पाशविक कहा जाता है, पर यह पशु की तौहीन है। पशु बलात्कार नहीं करते, सूअर तक नहीं करता मगर आदमी करता है।' न जाने कितनी लीलण हमारी असभ्य समाज की भेंट चढ़ती है। मेरा मानना है कि ऐसा कुकृत्य पैशाचिक प्रवृत्ति का ही व्यक्ति कर सकता है, स्वाभाविक भी है।

एक बेटी के जीवन को सरल-सुगम बनाने का दायित्व जितना पिता का होता है उससे कहीं अधिक उसकी मां का होता है। यहां भी जब लीलण मरणोपरांत आप-बीती सुनाती हैं तो अपनी मां का जिक्र इस प्रकार करती हैं- 'ठीक ही तो है, लाश किसी की बेटी नहीं होती, उसके 'बेटी-प्राण' तो फड़फड़ा कर उड़ जाते हैं। मिट्टी के लौंदे-सी बिगड़ गई देह किसकी बेटी? मैं समझ सकती हूं तुम भी तो भीतर लाश ही हो गई थी, जब तुम मना कर रही थी पहचान से।'[14] लीलण के माता-पिता ने ही उसे पहचान और अपनाने से इनकार कर दिया। यहां कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि जिस समाज में मृत पुत्र का अस्तित्व और सम्मान एक मुआवजे की रकम से अधिक न रह जाता हो, वहां लीलण जैसी आदिवासी स्त्री को कौन पूछता हैं। हमारे पुरुषों और उनके भीतर परिवारों को पत्नी, प्रेयसी, बहन और बेटी के तौर पर कई लीलण मिल जाएगी, कुछ मर खप जाए तो किसे फर्क पड़ता है? कम से कम होश वालों को तो नहीं, क्योंकि होश वालों को संबंधों का सौदा करना आता है। बाकी जो बेहोश है उनकी अपनी समस्या है कि वह दरिंदे है या दिलदार। हमारा समाज जड़-जोरू-जमीन के मामले में आज भी आदिम ही है। वह सभ्यता के मोड़ पर आदिम से आदिवासी की यात्रा भी पूर्ण नहीं कर सका। संवेदना और समझ की कमी से स्त्री और पुरुष दोनों ही सत्ता की कुर्सी के पद डगमगा सकते हैं।

निष्कर्ष- साहित्य में जहाँ कहीं आदिवासी स्त्री का चित्रण हुआ है वहाँ हम आदिवासी स्त्री को मात्र स्वच्छंद यौन की वस्तु, लुटी-पिटी और क्षत-विक्षत

रूप में चित्रित किया हुआ ही देखते हैं। 'वंदना टेटे' लिखती है– 'भारतीय साहित्य में आदिवासी महिलाएं परदेशी के प्रेम में देह सौंपती, दाई, आया, सेविका आदि के रूप में मार खाती, बलात्कार भोगती हुई दिखाई देती है। अस्मिता, स्वशासन और आत्म निर्णय के अधिकार के लिए संघर्ष करती हुई आदिवासी स्त्रियाँ साहित्य और फिल्मों में एक सिरे से गायब हैं।'[15]

आदिवासी समाज में स्त्रियों का जीवन कल्पना और मनोरंजन का किस्सा नहीं है और ना ही वे नुमाइश की वस्तु है। वे दर्द सहने की आदी है, उनका जीवन कठोर संघर्ष की गाथा कहता है। किंतु मुक्ति की बेचौनी तो उनमें भी है। उनकी निगाहें अब उन लोगों को पहचानने लगी है, जो आदिवासी स्त्रियों को भोग की वस्तु मानते आए हैं और आदिवासी समाज को सस्ता मजदूर बनाकर उनकी संस्कृति, भाषा, जल, जंगल, जमीन को हथिया कर उन्हें पलायन के लिए मजबूर करते हैं। यही विडंबना आदिवासी समाज की स्त्री को अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए प्रेरित करती है। आज आदिवासी स्त्रियों को लेकर रूढ़ मानसिकता में बदलाव की अति आवश्यकता है। आदिवासी समाज भी इस पक्ष में आ चुका है। साहित्य में अब वह लिखने, बोलने व अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाने से कतई नहीं कतराती है। बस जरूरत है उन्हें शासन और संपूर्ण समाज के सक्रिय सहयोग और सहभागिता की।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ. रोज केरकेट्टा, आदिवासी संस्कृति और साहित्य : स्त्री का दर्जा
2. मनीषा कुलश्रेष्ठ, वन्या: आदिवासी स्त्री–संघर्ष की कहानियां, राजपाल एंड सन्स प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2024, पृष्ठ–07
3. वही, पृष्ठ–18
4. वही, पृष्ठ–20
5. वही, पृष्ठ–21
6. वही, पृष्ठ–21
7. वही, पृष्ठ–98
8. वही, पृष्ठ–142
9. वही, पृष्ठ–39
10. वही, पृष्ठ–90
11. वही, पृष्ठ–25
12. वही, पृष्ठ–29
13. वही, पृष्ठ–123
14. वही, पृष्ठ–73
15. वंदना टेटे, आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, रांची (झारखंड), 2013, पृष्ठ–72

****